इकाई 38 "कुरुक्षेत्र" का अभिव्यंजना शिल्प

इकाई की रूपरेखा

38.0 उद्देश्य
38.1 प्रस्तावना
38.2 काव्यरूप और नामकरण
38.3 काव्य-भाषा
38.4 बिंब, प्रतीक
38.5 अप्रस्तुत योजना
38.6 छंद एवं लय
38.7 सारांश
38.8 शब्दावली
38.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

38.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कुरुक्षेत्र के काव्यरूप के बारे में चचा कर सकेंगे,
- इसकी काव्य-भाषागत विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे,
- इसके अप्रस्तुत विधान के बारे में बता सकेंगे,
- इसमें प्रयुक्त छंदों ओर लय का विश्लेषण कर सकेंगे।

38.1 प्रस्तावना

इस खंड की पिछली इकाइयों में आप "कुरुक्षेत्र" का वाचन कर चुके हैं तथा इसके वस्तु पक्ष यानी कथावस्तु, पात्र विधान, भाव-व्यंजना प्रकृति एवं संवेदना आदि की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इससे पहले आपने यह भी पढ़ा कि प्रबंध काव्य क्या होता है, इसका स्वरूप कैसा होता है तथा हिन्दी में प्रबंध काव्य का विकास किस प्रकार हुआ? आप यह जानते हैं कि प्राचीन प्रबंध संकल्पना आधुनिक युग में आकर काफी बदल गई है। युग जीवन और परिस्थितियों की माँग तथा संवेदना में आए बदलाव ने कवियों को इस दिशा में प्रयोग और नवीनता के लिए प्रेरित किया है। आप यह जानते हैं कि "कुरुक्षेत्र" की रचना परंपरागत प्रबंध विधान के अनुसार नहीं हुई है। पिछली इकाई में कथावस्तु, पात्र विधान, रस आदि की दृष्टि से "कुरुक्षेत्र" का विश्लेषण-परीक्षण करते समय आपने देखा कि उनकी योजना विषय एवं प्रसंग की जरूरतों के अनुसार की गई है। इस इकाई में हम कुरुक्षेत्र के अभिव्यंजना शिल्प पर विचार करेंगे। परम्परागत प्रबंध दृष्टि की बजाए नवीन प्रबंध चेतना के अनुरूप "कुरुक्षेत्र" के सृजन में कवि ने अपने शिल्प पक्ष को कैसे रचने-गढ़ने का प्रयास किया है, इस बात का विश्लेषण-मूल्यांकन हम इस इकाई में करेंगे।

आप जानते हैं कि अभिव्यंजना शिल्प का सर्वाधिक व्यापक उपकरण होता है—काव्य रूप क्योंकि समस्त काव्य कौशल इसी परिधान में लिपटा होता है। ध्यान देने की बात है कि प्रत्येक कथ्य अपना रूप अपने साथ लेकर आता है अर्थात् कथ्य की संवेदना, गंभीरता और स्वभाव के अनुरूप रूप अपेक्षित होता है। रचनाकार यदि इस अपेक्षा को पूरा कर लेता है यानी सही "रूप" की तलाश कर लेता है और उसका समुचित निर्वाह कर पाता है तो रचना अपने प्रभाव ओर संप्रेषणीयता में सफल होती है। शिल्प के अन्य उपादान—भाषा, बिंब, प्रतीक, अलंकार, छंद, लय आदि सभी इस रूप-विधान के उपकरण होते हैं जिनके समुचित संयोजन के माध्यम से रचना में अन्विति उत्पन्न होती है। इस इकाई में इन सभी पक्षों की दृष्टि से कुरुक्षेत्र पर विचार किया जाएगा।

38.2 कुरुक्षेत्र का काव्य-रूप और नामकरण

"कुरुक्षेत्र" के काव्य को लेकर आधुनिक हिन्दी आलोचना और आलोचनाशास्त्र में गहरा वाद-विवाद हुआ है। इसका मूल कारण यह है कि "कुरुक्षेत्र" परंपरागत प्रबंध काव्य के सभी अनुशासनों को चुनौती के स्तर पर तोड़ता है। इसका कथानक महाभारत पर आधारित है, किन्तु महाभारत की कथा का वर्णन दिनकर का लक्ष्य नहीं है। वस्तुतः "कुरुक्षेत्र" का मूल स्वर गंभीर वैचारिकता का है जिसके माध्यम से कवि मूल समस्या-युद्ध-पर अपने विचार केन्द्रित करता है।

कुरुक्षेत्र **निबद्ध काव्य** या प्रबंध काव्य या संदर्भ काव्य के प्राचीन अनुशासन को तोड़कर एक नए ढंग की रचना प्रक्रिया के अंतर्गत नवीन प्रबंध दृष्टि का निर्माण करता है। यह नवीन प्रबंध दृष्टि कथात्मक, इतिवृत्त प्रधान, वर्णनात्मक है या सूचनात्मक कथा निर्देशों से अलग है। विद्धानों ने उदाहरण दे कर समझाया है कि जिस अर्थ में हरिऔध के "प्रिय प्रवास", मैथिलीशरण गुप्त के "साकेत" को कथात्मक प्रबंध कहा गया है उस अर्थ में या उस प्रबंध दृष्टि से 'कुरुक्षेत्र' को प्रबंध काव्य नहीं कहा जा सकता। 'कुरुक्षेत्र' की प्रबंधात्मक नवीनता का बोध स्वयं दिनकर को है। वह स्वयं कुरुक्षेत्र के "निवेदन" के अंतर्गत इस तथ्य को रेखांकित करते हैं–

> "मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाए बिना भी कहा जा सकता था, किंतु, तब यह रचना शायद प्रबंध के रूप में नहीं उतर कर मुक्तक बन कर रह गई होती। तो भी यह सच है कि इसे प्रबंध के रूप में लाने की मेरी कोई निश्चित योजना नहीं थी।"

इस कथन से जाहिर है कि परंपरागत प्रबंध के अनुशासन इतने कड़े थे कि किसी कवि को प्रबंध काव्य लिखने के लिए एक निश्चित योजना का प्रारूप अपने मन में बुनना पड़ता था क्योंकि कथात्मकता, कलात्मकता और चरित्र योजना तीनों का सम्यक निर्वाह निश्चय ही एक कलात्मक दक्षता की माँग करता था, और ऐसा करने में कवि का ध्यान विचारों से हटकर कथा संयोजन पर प्रायः केन्द्रित हो जाता था। दिनकर कथा से हट कर विचार पर ध्यान केन्द्रित करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने संकेत दिया कि प्रबन्ध के रूप में लाने की उनकी कोई निश्चित योजना नहीं थी।

विशेष बात यह भी है कि यह काम सोचते-सोचते पूरा किया गया और सोचने का विषय था युद्ध जैसा पागल कर देने वाला प्रश्न। हर बार हर युद्ध एक नई स्थिति-परिस्थिति की मनोभूमिका का निर्माण करता है। युद्ध की इस नई मनोभूमिका में जब विज्ञान का प्रवेश हुआ तो समस्या ने चिंतन का नया रुख अपनाया। स्वयं दिनकर ने छठा सर्ग विज्ञान या वैज्ञानिक युद्ध के विचार पक्ष को लेकर लिखा, और यह सर्ग एक प्रकार से कुरुक्षेत्र की अंतर्योजना के भीतर "फिट" किया गया दिखाई देता है। फिट हुआ या नहीं यह अलग बहस का विषय है लेकिन दिनकर कहते हैं–

> "पूरा का पूरा छठा सर्ग ऐसा ही क्षेपक है जो इस काव्य से टूट कर अलग भी जी सकता है।"

इस कथन से यह ध्वनि साफ है कि कुरुक्षेत्र के सभी सर्ग लंबी वैचारिक कविताएं हैं जिन्हें विचार के अंतः संगठन के आधार पर सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत कर दिया गया है। "कुरुक्षेत्र" के काव्य रूप की समस्या स्वयं रचनाकार को इतना मथ रही थी कि "निवेदन" के अंत में वह पुनः बोले–

> "अंत में, एक निवेदन और। कुरुक्षेत्र के प्रबंध की एकता उसमें वर्णित विचारों को लेकर है। दरअसल इस पुस्तक में प्रायः सोचता ही रहा हूं। भीष्म के सामने पहुँच कर कविता जैसे भूल सी गई हो। फिर भी, कुरुक्षेत्र न तो दर्शन है और न किसी ज्ञानी के प्रौढ़ मस्तिष्क का चमत्कार।"

कवि के इस कथन पर ध्यान केंद्रित करते ही कुछ तथ्य स्वतः उभरते हैं जैसे–

1) कुरुक्षेत्र के प्रबंध की एकता उसमें निहित संवादात्मक वैचारिकता पर आधारित है।

2) प्रबन्ध की एकता से तात्पर्य है–वैचारिक प्रभाव की सघनता और गहनता में व्याप्त आंतरिक अंतःसूत्रता, क्योंकि आधुनिक प्रबंध दृष्टि इसी पर अपने को केंद्रित करती

है। यह दृष्टि एक प्रकार से प्रबंध प्रतिमान बन गई है।

3) पूरी कृति में सोचने का अर्थ है–ढर्रे से अलग हटकर मूल सत्य की तलाश। सत्यान्वेषण नई दृष्टि की शक्ति से कथा की पुरानी केंचुल को फाड़ देता है और कवि कथा का कच्चे माल की तरह इस्तेमाल करता है। यही काम दिनकर ने "कुरुक्षेत्र" में किया है।

4) कविता जैसे भूल सी गई हो का अर्थ है–काव्यात्मकता में निहित भावावेग, कल्पनातिरेक और रूप के अन्य ऐंद्रजालिक अवयवों का अभाव। "कुरुक्षेत्र" भाव केंद्रित न होकर एक ऐसी विचार केन्द्रित रचना है जिसमें युद्ध के तत्वदर्शन पर कवि एक दार्शनिक की तरह हर कोने से सूक्ष्म से सूक्ष्मतर विचार करते हैं। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र मस्तिष्क के स्तर पर चढ कर बोलने वाली रचना है अर्थात् बौद्धिक ढंग का विचारात्मक प्रबंध काव्य है।

प्रश्न उठता है कि यदि "कुरुक्षेत्र" बौद्धिक ढंग का विचारात्मक प्रबन्ध काव्य है तो क्या इसे हम प्रबंध काव्य के अंतर्गत महाकाव्य, खंडकाव्य या एकार्थकाव्य जैसा कोई नाम दे सकते हैं क्योंकि आरंभ में "कुरुक्षेत्र" को "प्रगतिवादी विचारधारा का प्रतिनिधि महाकाव्य" तक घोषित किया गया। किन्तु जब महाकाव्य की नवीन अवधारणा पर ध्यान गया तो स्पष्ट हुआ कि यह रचना महाकाव्य नहीं कही जा सकती। इसे एक उच्च कोटि का खंड काव्य भी कह पाना कठिन पड़ता है क्योंकि नए खंड काव्य की परिभाषा पुराने खंड काव्य की परिभाषा से इस कदर अलग हो गई कि दोनों एक-दूसरे की तरफ मुँह करके भी खड़ी नहीं होती। नया खंड काव्य लंबी कविता का पर्याय हो गया है क्योंकि लंबी कविता विचार की सघनता और प्रसरणशीलता में अपने आकार को बढ़ा लेती है। किन्तु यदि उसकी वैचारिक अन्विति खंडित हो जाती है तो कृति अपने समग्र प्रभाव में मलिन पड़ जाती है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का यह कथन–"कुरुक्षेत्र में विचारात्मक अवयव का प्राधान्य है" महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें न तो कोई साँचे ढला कथानक है न कोई नियम निर्धारित नायक, न कोई रुचियों और अर्थप्रकृतियों का पूर्व निर्धारित जाल, न कोई ऐसी सर्गबद्ध योजना जो युद्ध दर्शन को मोड़ों और कोणों पर ला कर खड़ा करती हो। अपनी पूरी बनावट में यह रचना विचार काव्य की ओर झुकी है किंतु यह विचारकाव्य-एकार्थ काव्य का पर्यायवाची नहीं है। एकार्थ काव्य में चरितकाव्य के तत्व मिले होते थे और आख्यान (कथावृत्त) एक खास ढंग से व्यक्ति केंद्रित होता था। कुरुक्षेत्र न भीष्म पर केंद्रित रचना है न युधिष्ठिर पर। यह युद्ध को केन्द्र में कर के मानवीय समस्याओं और चिंताओं को नए कोण से उठाती है। यदि ऐसा न होता तो दिनकर को यह न कहना पड़ता कि कुरुक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है। इसलिए नहीं हुई कि दिनकर युद्ध विषयक विचारों का एक पक्ष भीष्म पितामह के नाम से रखते हैं और दूसरा पक्ष युधिष्ठिर के माध्यम से। दोनों ही पक्ष प्रधान और महत्वपूर्ण हैं और दोनों ने ही मनुष्य को लगातार उद्वेलित और आंदोलित किया है। दिनकर ठीक कहते हैं–"आत्मा का संग्राम आत्मा और देह का संग्राम देह से जीता जाता है। यह कथा युद्धांत की है।" भीष्म और युधिष्ठिर दोनों एक युद्ध बाहर लड़ते हैं और एक युद्ध अपने मन के भीतर। किन्तु यात्राएँ भिन्न हैं। दिनकर ने इसीलिए प्रबंध का गठन वैचारिक अन्विति पर केंद्रित कर दिया है। डा. नगेन्द्र ने इसे–"चिंतन प्रभाव लंबी कविता" ठीक ही कहा है। कुरुक्षेत्र की प्रबंध ध्वनि दो विरोधी विचारधाराओं की एकता पर आधारित है। किन्तु दिनकर ने वैचारिक प्रबंध काव्य की नवीन प्रबंध प्रतिमा को खंडित नहीं होने दिया है।

कुरुक्षेत्र का नामकरण

किसी रचना के नामकरण की सार्थकता इस बात से तय होती है कि नाम रचना के बारे में क्या और कितना इंगित करता है? रचना जो कुछ कहती है उसे नाम कहाँ तक वहन करता है? इस दृष्टि से कभी-कभी तो रचनाकार अपनी कृति का नाम उसके प्रधान पात्र के नाम पर रख देता है जैसे "रामायण", "पद्मावत", "रत्नावली"। कभी कृति के प्रमुख घटनास्थल के नाम पर नामकरण कर दिया जाता है जैसे–"साकेत", "हल्दीघाटी"। कभी रचनाकार रचना की प्रमुख प्रवृत्ति या घटना को नाम के माध्यम से इंगित करता है जैसे–"प्रिय प्रवास", "वैदेही वनवास", "मिलन"। कभी रचनाकार रचना के नाम को काफी व्यापक और सांकेतिक अर्थ देना चाहता है और वह अपनी रचना को प्रतीकात्मक नाम देता है जैसे–"महाभारत", "भँवरगीत", "कामायनी",। प्रतीकात्मक नाम अपने अभिधार्थ के अलावा भी ऐसा बहुत कुछ संकेत करता है जिसे रचना प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष ढंग से उद्घाटित करती है।

"कुरुक्षेत्र" नाम पर विचार करने पर हमें इस नाम के कई पक्ष नजर आते हैं। सर्वप्रथम तो यह घटना और स्थान से संबद्ध नाम दिखाई देता है। यह महाभारत का युद्ध स्थल है। भीष्म पितामह कुरुक्षेत्र की रणभूमि में शर-शय्या पर लेटे हैं। युधिष्ठिर यहीं उनसे बात करने जाते हैं। अतः जिस प्रसंग को दिनकर ने लिया है उसकी घटनाओं और कार्यों से इसका सीधा संबंध है। लेकिन "कुरुक्षेत्र" नाम केवल इतने ही अर्थ का द्योतक नहीं है। चूंकि कवि युद्ध की सनातन समस्या से प्रश्नाकुल होकर काव्य सृजन कर रहा है अतः कुरुक्षेत्र यहाँ युद्ध मात्र का प्रतीक है साथ ही युद्ध से जुड़ी समस्त विभीषिकाओं, उसके परिणामों का प्रतीक भी है। इसके अतिरिक्त यह मनुष्य के भीतर विचारों और भावों की टकराहट और संघर्ष का, युधिष्ठिर के मन की प्रश्नाकुलता और द्वंद्व का, युद्ध के पक्ष और विपक्ष में उठने वाले विचारों के संघर्ष का प्रतीक है। इस तरह "कुरुक्षेत्र" नाम "साकेत" या "हल्दीघाटी" की भाँति स्थान विशेष मात्र का सूचक मात्र नहीं है। "कुरुक्षेत्र" का रूढ़ अर्थ और व्यंजित अर्थ दोनों ही यहां निहित हैं। मूलतः यह रचना युद्ध की समस्याओं को लेकर विचारों का कुरुक्षेत्र है। इस दृष्टि से यह नाम काफी सार्थक है।

बोध प्रश्न 1

क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर सही (✓) या गलत (✗) का निशान लगाकर दीजिए।

i) 'कुरुक्षेत्र' एक परंपरागत प्रबंध काव्य है। ( )

ii) 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर ने नवीन प्रकार की प्रबंधात्मकता की सृष्टि की है। ( )

iii) 'कुरुक्षेत्र' को प्रबंध W में लिखने की दिनकर ने प्रारंभ से ही योजना बनाई थी। (

iv) कुरुक्षेत्र' विचार प्रधान प्रबंध है। (

v) 'कुरुक्षेत्र' में कथा का निर्वाह विधिवत् किया गया है। ( )

ख) 'कुरुक्षेत्र' का काव्य-रूप क्या है? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ग) 'कुरुक्षेत्र' नाम की सार्थकता पर पाँच पंक्तियां लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

38.3 कुरुक्षेत्र की काव्य भाषा

दिनकर की काव्य भाषा में सृजनात्मकता के कई स्तर और कई रूप एक साथ मिलते हैं। मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी के काव्य से प्रेरणा पाने के कारण दिनकर सीधी स्पष्ट और संप्रेषणीय भाषा का प्रयोग करते हैं। जिसे शुद्ध साहित्यिक भाषा कहा जाता है, जिसमें काव्यात्मकता के लिए शब्द छल अधिक होता है, उस काव्य भाषा को दिनकर कभी स्वीकार नहीं करते। छायावाद की शक्ति से परिचित होते हुए भी दिनकर छायावादी काव्य भाषा के आभिजात्य और उसके तिलस्म को चुनौती के स्तर पर तोड़ते और छोड़ते दिखाई देते हैं। दिनकर की काव्य भाषा का मूल आधार बोलचाल की खड़ी बोली है। किन्तु इस बोलचाल की भाषा को काव्य भाषा बनाते समय दिनकर विचार और बिंब का उस पर ऐसा प्रभाव डालते हैं कि अर्थ धूप की तरह साफ दृष्टिगत होता है।

"कुरुक्षेत्र" की काव्य भाषा की विशेषता यह है कि इस चिंतनात्मक काव्य में अधिकतर सीधी अभिव्यक्ति मिलती है और भाषिक संरचना ऐसी है कि हर शब्द अपने संदर्भ में सघन अर्थ की झनकार छोड़ता है। उर्दू कविता की एक विशेषता भी दिनकर की काव्य भाषा में मौजूद है और वह है जुबान पर चढ़कर बोलने वाली चुस्त-दुरुस्त मुहावरेदानी जैसे–

"पापी कौन मनुज से
उसका न्याय चुराने वाला
या कि न्याय छीनते जन का
शीश उड़ाने वाला"

"राज सुख लहू परे **कीच का कमल है**"

इसमें अर्थ की लाक्षणिकता पूरे विचार को प्रभावित करती है और चमत्कार से ज्यादा गहरी विचार सघनता का संकेत करती है।

"दिनकर" शब्दों की रगड़ से नए अर्थ संदर्भ रचते हैं और भाषा में विचारों की आग एक निश्चित ताप का अहसास कराती है। दिनकर ऐसा विशिष्ट शब्द विन्यास करते हैं कि काव्य भाषा अपने निर्धारित स्वरूप के भीतर आवेग प्रेरित शक्ति से भर जाती है और उसकी पूरी लय अर्थ-व्यंजना की सामर्थ्य ग्रहण कर लेती है। खड़ी बोली की सहज समृद्धि के लिए दिनकर और उनका काव्य सदैव ही याद किए जाएंगे क्योंकि कुरुक्षेत्र की काव्य भाषा अपनी अर्थ-व्यंजना शक्ति और शब्द भंडार की समृद्धि से विचार को विस्तार की ओर सहयोगी भाव से मोड़ती है। दिनकर की काव्य भाषा दृष्टि व्याकरण के रूढ़ नियमों में न बंधकर विचार के अनुकूल खुलती है और कविता की कथन भंगिमा में नए सौंदर्य की सृष्टि करती है, जैसे–

"करते प्रणाम छूते सिर से पवित्र पग
उंगली को धोते हुए लोचनों के नीर से,
हाय पितामह 'महाभारत विफल हुआ'
चीख उठे धर्मराज व्याकुल, अधीर से।"

यहाँ कवि ने चित्र-बहुल, बिंब-बहुल संस्कारी भाषा का प्रयोग किया है। प्रणाम करना, पवित्र पैरों पर सिर रखना जैसे भावों के सांस्कृतिक संवेदन को कवि ने जीवंतता के साथ अर्थ और क्रिया दोनों की गति को रक्षित रखते हुए प्रस्तुत किया है। भाषा में सांस्कृतिक बोध का अर्थ है कवि को काव्य भाषा परंपरा के स्वभाव और स्वरूप की पहचान। कहना न होगा यह पहचान दिनकर को अपने काव्य सृजन के शुरू से ही रही है। इसलिए जब वह किसी भी स्थिति को दिखाते हैं तो ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं कि उनके स्थान पर कोई दूसरा शब्द उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। इन शब्दों का अनुवाद असंभव प्रतीत होता है। शब्द अपने मूल अर्थ में पूरी स्थिति के संदर्भ को संजोए होते हैं जैसे ऊपर "हाय", "विफल", "चीख", "व्याकुल", "अधीर" आदि शब्दों का प्रयोग। द्विवेदी युग में गुप्त जी ने "हाय" जैसे शब्दों का प्रयोग कविता में एक खास ढंग से किया था, उसी ढंग का शब्द प्रयोग दिनकर भी अपनी काव्य भाषा में करते हैं। इसलिए दिनकर की काव्य भाषा खड़ी बोली काव्य परंपरा की जन-जीवन सजीवता का एक हिस्सा है।

कविता की भाषा का प्राण राग अर्थात् लयमान संगीत है। विचारों की भी अपनी एक लय होती है। दिनकर इस लय के लिए शुरू से ही प्रसिद्ध रहे हैं, इसलिए उनकी कविता मंचों, गोष्ठियों और जन जीवन के अन्य समूहगान उत्सवों में लोकप्रियता पाती रही है। एक प्रकार से दिनकर भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का विकास और विस्तार करते हैं। प्रगतिवाद ने छायावादी काव्य भाषा के खिलाफ जो झंडा उठाया था उसका एक सार्थक परिणाम दिनकर की कृति कुरुक्षेत्र में दिखाई देता है। विराट और रौद्र रूपों के चित्रण में दिनकर भाषा की चित्रात्मकता और लाक्षणिकता का ध्यान रखते हैं। कवि प्रतिभा के बल पर नवीन शब्दों की गति को प्रश्नों, संकेतों, दहाड़ती इच्छाओं, पश्चाताप की भंगिमाओं आदि से सामने लाता है–

"कौन देखता है शवदाह बंध बांधवों का?
उत्तरा का करुण विलाप सुनता है कौन?"

यह बात इस ढंग से कही गई है कि पूरा कथन जैसे परिवेश में तन जाता है। कथन भंगिमा में दिनकर काफी माहिर कवि हैं। इसलिए वक्रोक्ति और व्यंजना दोनों ही उनकी भाषा में दूर तक अपना प्रभाव छोड़ती हैं। शब्दों को कवि ने जीवन के भीतर से खींचकर ग्रहण किया है इसलिए देश और काल के मध्य इनका आलोक मलिन नहीं पड़ता। जिस समय कुरुक्षेत्र छपा था (1946) उस समय भी इसकी भाषा की ताजगी और जीवंतता को विद्वानों ने सराहा था और इतना समय बीत जाने पर भी इस कृति की भाषा बासी या बुझी हुई दिखाई नहीं देती।

खड़ी बोली जागरण की चेतना थी। द्विवेदी युग जिस जागरण का प्रारम्भ था, छायावादी युग उस जागरण का विकसित चरण। छायावाद में खड़ी बोली सौंदर्य बोध और भाव गौरव से भर गई। प्रगतिवाद ने उसे राज सिंहासन से उतारकर जन सिंहासन की ओर प्रेरित किया। संयोग की बात यह है कि दिनकर, द्विवेदी युग छायावाद और प्रगतिवाद तीनों के समानांतर अपने काव्य सृजन को परिवर्तनकारी शक्तियों से जोड़ते हुए बढ़ाते रहे। भाषा का रीतिवाद (कृत्रिम कलाकारिता) दिनकर को कभी पसंद नहीं रहा। फलतः "कुरुक्षेत्र" जैसी सशक्त रचना में वह उन्मुक्त और कुशल शब्द-शिल्पी के उभरते रूप में उभरते हैं। कठिन से कठिन तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हैं। किन्तु शब्द उनके विचारों में इतने रिले-मिले आते हैं कि सहसा उनकी कठिनता का बोध ही नहीं होता। कुरुक्षेत्र के आरंभ की ही एक पंक्ति है–

"जिसका हृदय उतना मलिन जितना कि **शीर्ष वलक्ष** है" इसी प्रकार दूसरे सर्ग में–

"हाथ जोड़े मृत्यु रही खड़ी **शास्ति मान** कर"
"बाणों का शयन बाण का ही **उपधान** पर"
"कृष्ण कहते हैं युद्ध **अनघ** है"
"अंग भर जाते वनानी के **निहत** तरुगुल्म से"

द्वितीय सर्ग में ही "महीरुह" "विमर्श" "प्रभंजन", "निदाघ", "अंतर्व्योम", "संक्रमशील", "शार्दूल", "मृषा", "जल्पना", "सत्व", "विदलित", आदि अनेक शब्द मिलते हैं किन्तु इनका प्रयोग इतनी सहजता और कवि कौशल के साथ किया गया है कि काव्य प्रवाह में न तो अवरोध उत्पन्न करता है न ही अर्थ गति में खटकन। यह तत्सम शब्दावली बोलचाल की लय और सहजता, तद्भव और देशज शब्दों के सहज प्रवाह की बनावट का अभिन्न अंग बन गयी है। एक प्रकार से 'कुरुक्षेत्र' की काव्य भाषा की चेतना में आगामी विकास के चिह्न दृष्टिगत होते हैं। नयी कविता ने बोलचाल की भाषा के खुलेपन को दोहराया है उसके बीज मानो दिनकर के "कुरुक्षेत्र" राश्मिरथी जैसे काव्यों में मिलने लगते हैं।

दिनकर ने उपलब्ध शब्दों का नव-संयोजन किया। तत्सम शब्दों को नूतन भावों से आलोकित किया और संयोजन इस नवीन भंगिमा के साथ किया कि उनमें अद्भुत अर्थ-व्यंजना आ गई। स्वर-संधि के आधार पर वह मुक्त छंद में भाषा को युद्ध के सघन वातावरण तथा क्रिया-व्यापारों से जोड़कर प्रस्तुत करने लगे। खड़ी बोली गद्य विकास भी दिनकर की काव्यभाषा में सीधी अनुगूँज छोड़ता है क्योंकि गद्य जीवन संग्राम की भाषा है। भीष्म पितामह की भाषा में प्रायः काव्यात्मकता कम गद्यात्मकता अधिक है। जैसे–

"कायरों सीं बातकर मुझको जला मत, आज तक

है रहा आदर्श मेरा वीरता बलिदान ही जाति
मंदिर में जला कर शूरता की आरती
जा रहा हूँ विश्व से चढ़ युद्ध के ही यान पर।"

दरअसल 'कुरुक्षेत्र' के सृजन तक हिन्दी का गद्य इतना प्रौढ़ और विकसित हो चुका था कि वह पद्य में भी विचार केंद्रित होकर अपने ही स्वाभाव से बात कहने को विवश था। परिणाम यह हुआ कि कुरुक्षेत्र की काव्य भाषा में गद्य की वैचारिकता ने प्रवेश किया है। यह चिंतन-मनन और विचारों के संग्राम की भाषा है।

दिनकर की पदावली में शक्ति संपन्न शैली का संचार है जिसका अनुभव 'कुरुक्षेत्र' को पढ़ने, काव्य वाचन करने या उसकी पदावली को बोलने मात्र से होता है। अभिव्यंजना में इस प्रकार की अकड़ और गरिमा का सामंजस्य है कि ओजस्विता अपने पूरे आलोक के साथ विद्यमान रहती है। लोक जीवन की भाषा की दिनकर उपेक्षा नहीं करते। यही कारण है कि चित्रात्मकता, नाद-सौंदर्य और कभी-कभी शब्द-वक्रता की नूतन सृष्टि सहज रूप से ही हो जाती है। माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य भाषा का यह गुण दिनकर को लोक चिंताओं से जोड़ता है। 'कुरुक्षेत्र' की भाषा में दिनकर जिस ढंग से सोचते रहे हैं उसकी धमक इस भाषा का आंतरिक अन्विति पर दिखाई देती है। विचारों में देश और काल के उफनते-उबलते संदर्भ गुँथे हैं।

इस काव्य भाषा की ध्वनि में **अर्थ वक्रोक्ति** का प्रयोग बहुतायत से हुआ है। इसीलिए दिनकर लय एवं गति को काव्यानुभूति में सश्लिष्ट करके सामने लाते हैं। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भी इस भाषा की अर्थ व्यंजना का विस्तार करता है—

"बचो युधिष्ठिर इस नागिन का **विष से बुरा दशन है**"

"बुझा बह्नि का दीप वीर वर
आँख मूँद चलते हैं"

"**आग हथेली पर सुलगाकर**
सिर का हविशा चढ़ना"

दिनकर अंतर्मुखी प्रवृत्ति के कवि नहीं हैं इसलिए उनकी काव्य भाषा में कथन का सीधापन है और शब्द संयोजन का इस ढंग का है कि जन साधारण में वह अपने अर्थ का संप्रेषण कर सके। अभिधा शब्द शक्ति पर दिनकर को सीधा विश्वास है। लक्षणा-व्यंजना का प्रयोग कभी-कभार ही वह करते हैं। जहाँ कहीं लक्षणा का प्रयोग हुआ है वहीं काव्य में विदग्धता-समृद्धि, सजीवता तथा मूर्तिमत्ता का संचार होता है। जैसे—

"आनन सरल वचन मधुमय है
तन पर शुभ्र वसन हैं
बचो युधिष्ठिर इस नागिन का
विष से भरा दशन है।"

यहाँ संपूर्ण लक्षणा विरोधाभास से प्रस्तुत की गई है।

दिनकर की काव्य भाषा अभिधा पर आश्रित प्रत्यक्ष भाव और विचार की अभिव्यंजना की भाषा है। हर विचार को दिनकर ने चित्र या बिंब से प्रस्तुत किया है क्योंकि दिनकर अमूर्तता अस्पष्टता और दुरूहता को अपनी काव्य भाषा में फटकने तक नहीं देते।

लय और छंद के लिए व्याकरण और वर्तनी की छूट भी लेते हैं। जैसे—

"और जब तू ने उलझकर व्यक्ति के संदर्भ में
क्लीव-सा देखा किया लज्जा हरण

"ले न सकता जो वैरियों से **प्रतीकार**"

"**किस प्रकार फैले पृथिवी पर**
करुणा, प्रेम, अहिंसा"

"**निर्दोष**, कुल-वधु एकवस्त्रा
को खींच महल से"

"बात पूछने को विवेक से
जभी वीरता नहीं जाती"

लेकिन यह छूट कविता के संपूर्ण प्रभाव में सकारात्मक भूमिका अदा करती है। यह भाषा की त्रुटि न हो कर उसकी सर्जनात्मक प्रयोग है।

बोध प्रश्न 2

क) "दिनकर" की काव्यभाषा निम्नलिखित में से किन कवियों से प्रेरणा पाती है? सही (✓) गलत (X) का निशान लगाकर उत्तर दीजिए:

i) मैथिलीशरण गुप्त
ii) सुमित्रानन्दन पंत
iii) रामनरेश त्रिपाठी
iv). माखनलाल चतुर्वेदी
v) अज्ञेय
vi) जयशंकर प्रसाद

ख) हाँ या नहीं में लिखकर उत्तर दीजिए–

दिनकर की काव्य भाषा में

i) बोलचाल की भाषा की सहजता और खुलापन है।
ii) उर्दू की सी मुहावरेदानी है।
iii) छायावादी कवियों जैसा भाषा-आभिजात्य है।
vi) बिंब-बहुलता और चित्रात्मकता है।
v) कृत्रिम कलाकारी है।
vi) तत्सम शब्दों का खूब प्रयोग है।
vii) तद्भव और देशज शब्दावली का सहज सौंदर्य है।
viii) अस्पष्टता और दुरूहता है।

ग) "कुरुक्षेत्र" की काव्य भाषा में मुहावरों के प्रयोग के दो उदाहरण दीजिए–

.....
.....
.....
.....
.....

घ) "कुरुक्षेत्र" में तत्सम शब्दों के दो उदाहरण काव्य पंक्तियाँ उद्धृत करके दीजिए–

.....
.....
.....
.....
.....
.....

ङ) रिक्त स्थानों की पूर्ति कोष्ठक में दिए गए शब्दों में सही शब्द चुनकर कीजिए–

i) दिनकर की काव्य भाषा प्रमुखतया .....प्रधान है। (अभिधा/लक्षणा/व्यंजना)

ii) लय की सृष्टि के लिए दिनकर वर्तनी की .....लेते हैं। (छूट नहीं लेते/लेते हैं)

iii) "कुरुक्षेत्र" की भाषा में.....हैं। (ओजस्विता/स्वप्निलता)

38.4 बिंब और प्रतीक

बिंब और प्रतीक दिनकर के काव्य में विचार को मूर्त रूप में प्रस्तुत करने के लिए आए हैं। प्रतीक का काम भाषा में भाव गोपन से ज्यादा भाव प्रकाशन का होता है। कथन और संकेत के द्वारा उसका महत्व बढ़ गया है। कथ्य को दिनकर के प्रतीकों ने अनुभूतिधर्मी बना कर प्रस्तुत किया है। यह भी कहा जा सकता है कि प्रतीक दिनकर की काव्य भाषा में अभिव्यंजना की एक पद्धति है। गहन लाक्षणिक शक्ति के कारण इन प्रतीकों की अर्थशक्ति अत्यंत विस्तृत एवं व्यापक है। पहले तो "कुरुक्षेत्र" नाम ही व्यापक प्रतीक है जिसमें "कुरुक्षेत्र" का रूढ़ अर्थ और कुरुक्षेत्र का लक्षण-व्यंजना पर आधारित अर्थ अथवा व्यंग्य अर्थ अपनी केंद्रीय चेतना के साथ निहित है। हम अपने भीतर और बाहर लगातार विचारों का कुरुक्षेत्र देखते महसूस करते रहते हैं। रूपक की भाषा में कहें तो भीष्म और युधिष्ठिर हमारे मन के ही दो पक्ष हैं। कोई भी रूपक कथन इसी अर्थ में प्रतीक कथा होती है कि वह सांकेतिक अर्थ की चित्रात्मक पद्धति को अपनाती है। किन्तु प्रतीक भाव चित्र और बिंब दोनों से भिन्न होते हैं। मानचित्र की भाँति प्रतीक आकृति के साम्य पर आधारित न हो कर प्रभाव के साम्य पर आधारित होता है। बिंब स्पष्ट और इंद्रिय ग्राह्य होता है किन्तु प्रतीक अगोचर अमूर्त सत्य की सांकेतिक लाक्षणिक व्यंजना करने के कारण प्रायः इंद्रिय ग्राह्य नहीं होते। इसी कारण बिंब की अपेक्षा प्रतीक में व्यंजना का आधार अधिक गहरा होता है। निरंतर प्रयोग की आवृत्ति से बिंब जब सूक्ष्म भाव संवेदन की शक्ति अर्जित कर लेता है तब वह प्रतीक बन जाता है। आरंभ में भीष्म शक्ति संकल्प और प्रतिज्ञा के बिंब रूप में उभरे होंगे किन्तु धीरे-धीरे भाव-संवेदन की शक्ति, ने उन्हें एक ऐसे प्रतीक का रूप दे दिया जो शक्ति, त्याग, तप, संकल्प आदि कई अर्थों की व्यंजना करने लगा। ऐसे ही महाभारत के धर्मराज और दिनकर के धर्मराज अपने प्रतीकत्व में एक होते हुए भी भिन्न हैं। धर्मराज अनुचित-अनैतिक कार्यों के प्रति विचारशील होकर अनेक कोणों से सोचने को विवश हैं। ऐसे लोग बहुत कम होते हैं जो युद्ध से ऊपर उठ कर सोचने-समझने की स्थिति में रहते हैं। प्रायः व्यक्ति अपने स्वार्थ में गर्क रहता है। महाभारत कथा ने अनेक प्रतीकांश संकेतों से आए हैं–द्रौपदी, भीम आदि।

एक प्रकार से दिनकर की काव्य भाषा में ही पूरी स्थिति को प्रतीक में ढाल देने की कला निहित है। कहीं सृजन के प्रतीक हैं तो कहीं ध्वंस के प्रतीक। काम श्रृंगार के प्रतीकों का दिनकर संकेत मात्र करते हैं जैसे–

"प्रगटी होती मधुर प्रेम की
मुझ पर कहीं अमरता
स्यात् देश को कुरुक्षेत्र का
दिन न देखना पड़ता।"

मधुर प्रेम की अमरता में स्थूलता के स्थान पर लक्षणामूलक प्रतीकात्मकता का व्यवहार हुआ है। यदि इस प्रतीक का विश्लेषण किया जाए तो यह पूरी स्थिति के भीतरी अंतर्दशन को खोलता है। दिनकर ने छायावादी कवियों की भाँति सादृश्य वाले प्रतीकों का प्रयोग कम किया है। उन प्रतीकों को चुना है जो वेदना, करुणा या प्रकृतिजन्य परिवेश को सामने लाते हैं। कभी-कभार अवचेतन मन के भावों और विचारों की साँकल भी कुरुक्षेत्र में खटकती है जैसे–

"वीरगति पाकर सुयोधन चला गया है
छोड़ मेरे सामने अशेष ध्वंस का प्रसार
छोड़ मेरे हाथ में शरीर निज प्राणहीन
व्योम में बजाता जय दुंदुभि सा बारबार"

कितने ही उदाहरण लिए जाएँ, हम पाएंगे कि "कुरुक्षेत्र" के अधिकांश कथन प्रतीकों में लिपटे हैं जैसे–

'श्रृंग चढ़ जीवन के आर पार देखना', 'श्वेत शिरोरुह से प्रसन्न विभा का फैलना', 'ध्वंस

अवशेष पर सिर धुनना', 'भस्म राशि में सुख खोजना', 'लपटों से मुकुट के पट बुनना', 'नियति के व्यंग्य भरे अर्थ गुनना' आदि कृति की स्थितिगत तार्किकता में ठीक से पिरोये गए प्रतीक हैं।

"कुरुक्षेत्र" में प्रतीकों के कई रूप हैं। यहाँ नाम प्रतीक हैं, कार्य प्रतीक हैं साथ ही परंपरागत प्रतीकों का भी प्रयोग है। जलद, पारावार, तूफान, तिमिर, प्रलय आदि वे आदिम प्रतीक हैं जिन्हें भाषा लगातार ढोती चली आ रही है। विशेष बात यही है कि दिनकर बिंबमूलक प्रतीकों की ओर झुकाव रखते हैं। वे ऐसे प्रतीकों को नहीं गढ़ते जो अमूर्त और धूमिल हों। यह सच है कि प्रलय, अंधकार, कंदरा, शिखा, अभिमान, अभिशाप और युद्ध के तमाम आवेग भय प्रतीक दिनकर को पसंद हैं। परंपरागत प्रतीकों में भी वह अपना नया अभिप्रेत अर्थ भर सकते हैं। यह उनकी अद्‌भुत कवि शक्ति का प्रमाण है। कुरुक्षेत्र में ध्वंसमूलक विराट प्रतीकों का कुशल संयोजन दिनकर ने किया है। द्वितीय सर्ग के तूफान के रूपक में ऐसे बहुत-से प्रतीक एक साथ आ गए हैं जो स्थिति की भीषणता उद्वेलन और आलोड़न को स्पष्ट करते हैं। यहाँ बिंबमूलक प्रतीक का उदाहरण है–

"औ युधिष्ठिर से कहा, तूफान देखा है कभी?
किस तरह आता प्रलय का नाद वह करता हुआ?"

इस प्रकार के बिंबमूलक प्रतीकों की योजना दिनकर की काव्यकला का वैशिष्ट्य है। चित्रात्मक, मूर्त और मानस प्रत्यक्ष यह प्रतीक कला रहस्यवादी आवरण से एकदम मुक्त है। कुरुक्षेत्र के व्यंजनाधर्मी प्रतीक इसीलिए सूक्ष्म वैचारिक प्रतीक भी बने हैं कि वे विभिन्न मनोवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

दिनकर की कला चित्रभाषा के कारण समृद्ध भी है और समर्थ भी। उनकी अभिव्यंजना का अत्यंत महत्वपूर्ण उपकरण है शब्दचित्र। शब्द चित्रों की यह चित्रमयता ही बिंब विधान का एक अंतरंग एवं मूल तत्व है। यहाँ शब्द-चित्र (Image) भाव का पर्याय है जिसका मूल अर्थ है भाव या विचार को चित्रबद्ध करना, प्रतिबिंबित करना या मूर्त रूप प्रदान करना या प्रत्यक्ष रूप से उभारना। मनोवैज्ञानिक अर्थ में बिंब इंद्रिय बोध से संबंधित है क्योंकि बिंब-सृजन की प्रक्रिया में स्मृति और कल्पना के अनिवार्य संयोग की अपेक्षा रहती है। स्मृति का संबंध अंततः कल्पना से है। फलतः काव्यगत बिंब मूलतः कल्पना की सृष्टि है। कहा जा सकता है कि कल्पना ही मानस में बिंब को रूपायत करने वाली शक्ति है। एक मत यह भी है कि संपूर्ण कलाकृति कलाकार के मानस में अंकित एक संपूर्ण बिंब है। इस अर्थ में 'कुरुक्षेत्र' नामक कृति का बिंब युद्ध की चिरंतन समस्या से जूझते और युद्ध के अनेक पक्षों पर विचार करते हुए चिंतनशील मनुष्य का बिंब है, जिसकी अर्थ-व्यंजना की परिधि अत्यंत व्यापक है।

दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में ऐसे परंपरागत और नवीन बिंबों की सृष्टि की है जिन्हें हमारी इंद्रियाँ सीधे ग्रहण करती हैं। प्रायः दिनकर जटिल बिंबों के स्थान पर सरल और तात्कालिक बिंबों की सृष्टि करते हैं। किन्तु इस इंद्रियानुभव में ऐतिहासिक अर्थ नष्ट नहीं होता। जैसे–"व्रतमुक्त केशी द्रौपदी" का बिंब या उसको "जाग्रत शिखर प्रतिशोध की" कहना आदि।

कथनों और संकेतों से दिनकर ऐसे बिंबों की सृष्टि करते हैं जो अपनी विराटता द्वारा काफी आतंकित करते हैं जैसे–

"सटता कहीं भी एक तृण जो शरीर से तो
उठता कराल हो फणीश फुफकार है
सुनता गजेन्द्र की चिंघार जो वनों में कहीं
भरता गुहा में ही मृगेन्द्र हुंकार है
शूल चमकते हैं, छूते आग हैं जलाती भू को
लीलने को देखो गर्जमान पारावार है"

फणीश का फुफकारना, गजेन्द्र का चिंघारना, मृगेन्द्र का हुंकार भरना, धरती को निगलने के लिए समुद्र का गरजना आदि विराट बिंब एक साथ आए हैं। इस तरह के बिंब दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में बहुतायत से सृजित किए हैं जो पूरी की पूरी स्थिति को ही बिंब में बदल देते हैं जैसे–

"फूँक से जलाएगा अवश्य जगती को व्याल
कोई क्यों खरोंच मार उसको जगाता है
विद्युत खगोल से अवश्य ही गिरेगी कोई
दीप्त अभिमान को क्यों ठोकर लगाता है

दिनकर के काव्य में वैचारिक संवेदनशीलता बहुधा बिंब का पर्यायवाची बन गई है। उनके बिंब-विधान का अर्थ ऐंद्रियानुभवों की प्रमाणिकता का संकेत है। इस बिंब-विधान का प्रत्यक्ष संबंध चाक्षुष बिंब, श्रवण बिंब, स्पर्श, घ्राण और रस के बिंबों से है। असल में दिनकर की कविता में विचारों का ताप इतना ज्यादा है, गति इतनी तीव्र है कि बिना बिंब के उनका काम ही नहीं चलता। किन्तु ये बिंब कोरे वाग्विलास नहीं हैं, अपितु इनकी अनिवार्यता संवेदन को मूर्त करने के लिए हर जगह पर है। इन बिंबों में विविधता है और अर्थ प्रक्रिया को जीवंत करने की शक्ति है। दिनकर में वर्ण्य विषय के बिंब प्रस्तुत करने की क्षमता काफी विकसित है। छायावाद में ऐसी ही क्षमता निराला और पंत दोनों में दिखाई देती है।

दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में अनुभवमूलक बिंबों का इतना सार्थक प्रयोग किया है कि इस काव्य की संपूर्ण अभिव्यंजना को बिंबमूलक कहना अनुचित न होगा। इस विशिष्टता के कारण इस काव्य की अभिव्यंजना में जहाँ एक ओर विचार शक्ति की मूर्तता और जीवंतता के गुणों की अभिवृद्धि हुई है वहाँ दूसरी ओर इस प्रवृत्ति ने भाव की संप्रेषणीयता में प्रभावी भूमिका अदा की है। दिनकर के बिंब पाठक के मानस प्रतिपाद्य प्रभाव की समग्र प्रतिछवि को अंकित करते हैं। उनके बिंब विधान की सफलता का रहस्य जटिल और खंडित बिंब रचना में न होकर सहज संवेदनात्मक और कभी-कभी मिथिकल बिंबों के प्रयोग में निहित है। उनका अभिव्यंजना शिल्प मूलतः बिंबाश्रित है। प्रतीक उपकरण के रूप में आए हैं किन्तु वे स्वतंत्र रूप से काव्य के शिल्प की श्रीवृद्धि नहीं कर पाते। "कुरुक्षेत्र" को ठीक से देखने-समझने पर पता चलता है कि प्रतीक बिंब विधान के अंग रूप में ही आए हैं, इसलिए "कुरुक्षेत्र" की काव्यकला में बिंब योजना का विशेष महत्व है।

38.5 अप्रस्तुत योजना

काव्यगत अलंकारों के संदर्भ में प्रयुक्त "अप्रस्तुत" शब्द का एक पुराना और शास्त्रीय अर्थ है। सामान्यतः अप्रस्तुत शब्द उपमान का एक पर्याय है और उपमा अलंकार के चार अंगों में से एक अंग है। आचार्य शुक्ल ने अप्रस्तुत शब्द को उपमान के ही स्थानापन्न के रूप में प्रयुक्त किया है। अप्रस्तुत या उपमान का प्रयोग काव्य की अलंकरण सामग्री के अर्थ में होता है। अप्रस्तुत में वह सारी सामग्री समाहित हो जाती है जो कविता का अलंकरण करती है चाहे वह कथ्य हो, विशेषण हो, क्रिया हो, मुहावरा हो, बिंब हो, प्रतीक हो या कथन का कोई नूतन ढंग। कुछ भी हो सब उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। इस दृष्टि से हम कुरुक्षेत्र के अप्रस्तुत विधान पर निगाह डालते हैं तो निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं–

- "कुरुक्षेत्र" में अप्रस्तुत विधान की योजना कृत्रिम चमत्कार के रूप में नहीं की गई है। दिनकर ने अप्रस्तुत विधान का प्रयोग अभिव्यंजना की अर्थ संप्रेषण शक्ति के विकास के लिये किया है।
- इस अप्रस्तुत विधान ने कुरुक्षेत्र की युद्ध समस्या को प्रस्तुत करने का नया मार्ग प्रस्तुत किया है। वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा जैसे शब्द और अर्थ पर आधारित अलंकारों से दिनकर अपने कथन की प्रभावशक्ति को बढ़ाते हैं।
- इस अप्रस्तुत योजना का एक कार्य यह भी है कि यह वचन भंगिमाओं की संभावनाओं के अनेक कोणों से उजागर करती है।
- यह अप्रस्तुत योजना प्रतिपाद्य के विचार संदर्भ को साकार करने के लिए अभिव्यंजना में एक ऐसा सौंदर्य पैदा करती है कि जिससे कृति का पूरा रूप विधान आलोकित हो उठता है।

अप्रस्तुत योजना का प्रमुख आधार प्रभाव साम्य है। यद्यपि साम्य के तीन रूप मिलते हैं–रूप-साम्य, गुण-साम्य, प्रभाव-साम्य। इन तीनों की सूक्ष्म छायाओं के अंतर्गत सभी

प्रकार के अलंकार आ जाते हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह, स्मरण तथा मानवीकरण अलंकार आदि सभी रूप-गुण प्रभाव आदि के अंतर्गत समाहित मिलते हैं। दिनकर ने भाव या विचार को बिंब रूप में प्रस्तुत करने के लिए सादृश्यमूलक अलंकारों की शक्ति का भरपूर प्रयोग किया है। उपमानों के प्रयोग में दिनकर सावधान और समर्थ रचनाकार हैं। भीष्म पितामह का चित्र प्रस्तुत करते हुए वह कहते हैं–

"शरों की नोक पर लेटे हुए गजराज जैसे
थके टूटे गरुण से त्रस्त पन्नगराज जैसे"

वाणों की शैय्या पर लेटे पराक्रमी भीष्म पितामह की गजराज से तुलना का औचित्य तो है ही, साथ ही ऐसा बिंब बना है जो भीष्म के प्रताप को कल्पना में स्पष्ट करता है। यहीं पर गरुण भीष्म पितामह की संपूर्ण स्थिति को एक झटके से उजागर कर देता है। ऐसे ही "त्रस्त पन्नगराज" नाग वासुकि का फुफकार छोड़ता हुआ चित्र है। इस प्रकार कवि ने भीष्म को ऐरावत, गरुण और वासुकि के एक शक्ति क्रम से प्रस्तुत किया है। विशेष बात यह है कि स्थिति को स्पष्ट करने के लिए नवीन उपमान योजना का प्रयोग करते हैं जैसे–

"ईश जाने देश का लज्जा विषय
तत्व है कोई कि केवल आवरण
उस **हलाहल सी कुटिल** द्रोहाग्नि का
जो कि जलती आ रही चिरकाल से"

हलाहल सी कुटिलता के भाव को अमूर्तता में ले जाकर कवि ने अनुभव के आधार पर मूर्त किया है। इसी तरह दिनकर की उत्प्रेक्षाएँ काफी प्रभावी भूमिका को अदा करती हुई कविता के पूरे अर्थ प्रकाश को बढ़ा देती हैं जैसे–

"उस सत्य के आघात से
हैं झनझना उठती शिखाएँ प्राण की असहाय सी
सहसा विपंची पर लगे कोई अपरिचित हाथ ज्यों
वह तिलमिला उठता मगर
है जानता इस चोट का उत्तर न उसके पास है।

प्राण की असहाय सी शिराओं का सहसा झनझनाना कवि को ऐसा प्रतीत होता है मानो किसी अपरिचित हाथ ने वीणा के तारों को झंकृत कर दिया। यह संपूर्ण स्थिति का गतिमय और प्रभाव-साम्य से भरा चित्र है। दिनकर को उत्प्रेक्षा अलंकार से एक विशेष किस्म का अनुराग है। 'कुरुक्षेत्र' में अनेक ऐसे उदाहरण हैं जो सिद्ध करते हैं कि अक्सर अपनी बात कहने के लिये उन्हें उत्प्रेक्षा का सहारा लेना पड़ता है। कई बार उत्प्रेक्षा दिखाई देती है, कई बार लुप्त होती है। मूल भाव की सघन स्थिति को प्रस्तुत करने वाली उत्प्रेक्षा है–

"और तब चुप हो रहे कौंतेय
संयमित करके किसी विध शोक दुष्परिमेय
उस जलद-सा एक पारावार
हो भरा जिसमें लबालब किन्तु हो लाचार
बरस तो सकता नहीं रहता मगर बेचैन"

विवशता का पूरा चित्रण कवि ने उस जलद सा या पारावार सा जो भरा हो लेकिन छलक न सकता हो (उसकी बेचैनी मानो उसे भीतर ही भीतर मथती हो) किया है। यह एक ऐसा गुण और क्रिया का बिंब है जो पूरे प्रभाव से हमारी चेतना को पकड़ता है।

विचार के विस्तार में दिनकर स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति अलंकारों से स्थिति को स्पष्ट करते हैं जैसे अनुभावों से यह बात कहना–

"रुग्ण होना चाहता कोई नहीं
रोग लेकिन आ गया जब पास हो
तिक्त औषध के सिवा उपचार क्या?
शमित होगा वह नहीं मिष्टान्न से।"

इन पंक्तियों में स्वाभोक्ति अलंकार है क्योंकि इनमें स्थिति का प्रकृत वर्णन किया गया है।

किन्तु दिनकर वक्रोक्ति से बात कहने में चूकते नहीं हैं जैसे–

"तप का परंतु वश चलता नहीं सदैव
पतित समूह की कुवृत्तियों के सामने

यहाँ कवि ने तप पर या तपवादी विचारधारा पर सीधा व्यंग्य किया है। दिनकर लक्षणा से मानवीकरण अलंकार के भी मोहक संकेत जगाते हैं जैसे–

"पाशविकता खड्ग जब लेती उठा
आत्मबल का एक वश चलता नहीं"

पाशविकता का खड्ग उठाना मानवीय क्रियाओं का लक्षणा पर आधारित चित्र है। लेकिन यह चित्र विचार की पूरी गहराई के स्पर्श के साथ अनुभव और दृश्य बिंब में बदल देता है।

इस प्रकार दिनकर के कुरुक्षेत्र में अर्थालंकारों का प्राधान्य है। उत्प्रेक्षा, रूपक, मानवीकरण, अतिशयोक्ति, उल्लेख, अलंकार जगह-जगह भाव को स्पष्ट करने के लिए आए हैं। किन्तु प्रमुख बात यह है कि दिनकर अलंकारवादी चमत्कारवादी कवि नहीं हैं। मूल बात यह है कि उनके काव्य में प्रयुक्त अलंकार भावों की सजावट के लिए न होकर भावों की अभिव्यक्ति के विशेष साधन हैं। वे भाव के उत्कर्ष में विशेष भूमिका अदा करते हैं और दिनकर के विचारों को नवीन उपमानों से प्रस्तुत करने में सहायक हुए हैं। अनल में तपाए हुए कंचन के समान विचार की स्थिति को दिनकर उपमेय और उपमान से बराबर स्पष्ट करते चलते हैं और इस कर्म में उन्हें भलीभाँति सफलता मिली है।

38.6 छंद और लय

हिन्दी के आधुनिक काव्य में दिनकर अपनी कविता के लहजे (Tone) के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। उनके लहजे का न तो कोई अनुकरण कर सकता है और न ही उसे भुलाया जा सकता है। दिनकर का पूरा काव्य स्वभाव इस काव्य लहजे में निहित है और यह लहजा एक विशेष प्रकार की लय पर आधारित होकर भाव व्यापार को सक्रिय करता है। यह कहना गलत न होगा कि दिनकर के काव्य व्यापार की प्रमुख शक्ति काव्य लहजे पर आधारित लय है क्योंकि इस लय में बलाघात, स्वराघात, कालागति और यति-गति आदि भाव के उतार-चढ़ाव की सभी शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं। दिनकर ने लय को गति प्रवाह एवं विराम की पारस्परिक स्थितियों के क्रमिक संघात से उत्पन्न किया है। इसलिए इस लय में एक नैसर्गिक शक्ति है जो हमारी संवेदना को भावानुकूल उद्दीप्त-प्रदीप्त करती रहती है।

दिनकर ने छंदशास्त्र के रूढ़ बंधनों को अस्वीकार करते हुए भी छंद की अंतरंग शक्ति को सम्मान दिया है। 'कुरुक्षेत्र' की काव्यात्मकता का लय-छंद से घनिष्ठ संबंध है। इसका कारण है कि दिनकर का कवि स्वभाव ही छंद में लयमान हुआ है। अपने विचारों की झंकारों को उन्होंने शब्दों के छंदबद्ध अनुशासन में सँजोया है। छंद और लय विधान के भाव और विचार की शक्ति को ताजगी और जीवंतता प्रदान की है।

ध्यान रखने की विशेष बात यह है कि कुरुक्षेत्र में दिनकर ने अधिकतर मात्रिक छंदों का प्रयोग किया है। काव्यात्मक अनुभूति की तीव्रता के लिए प्रायः मात्रिक छंद अपनी प्रकृति से ही अनुकूल होते हैं। शायद इस बात का अहसास दिनकर को है और वह मात्रिक छंदों का प्रयोग विशिष्ट गति और भाव ऊष्मा की शक्ति के साथ करते हैं। मध्यकालीन कविता के सर्वाधिक प्रिय छंद रहे हैं–कवित्त और सवैया। कवित्त तो एक प्रकार से हमारा जातीय छंद ही है। दिनकर ने सवैया छंदों के संगीतात्मक प्रवाहपरक ठाठ को पूरी तरह अपनाया है। 'कुरुक्षेत्र' में सुंदरी सवैया का एक उदाहरण लीजिए जिसमें आठ सगण होते हैं और अंत में गुरु होता है–

"जब फूट पड़ी रण में यह आग तो कौन सा पाप नहीं किया तू ने?
गुरु के वध के हित झूठ कहा सिर काट समाधि में ही लिया तू ने
छल से कुरुराज की जाँघ को तोड़ नया रणधर्म चला दिया तू ने
अरे पापी मुमूर्षु मनुष्य के वक्ष को चीर सहास लहू पिया तू ने।

इस प्रकार के छंद दिनकर की सहजता से ही सिद्ध हैं। "कुंदलता" नामक छंद का उदाहरण देखिए जिसमें आठ सगण हैं और अंत में दो लघु हों–

"कुछ के अपमान के साथ पितामह
विश्व विनाशक युद्ध को तोलिये
इनमें से विघातक पातक कौन
बड़ा है? रहस्य विचार के खोलिए,
मुझ दीन विपन्न को देख दयाद्र हो
देव नहीं निज सत्य से डोलिए
नर नाश का दायी था कौन? सुयोधन
या कि युधिष्ठिर का दल बोलिए।"

दिनकर ने "चक्रवाल" की भूमिका में लिखा है–"कविता लिखने वालों को पिंगल अवश्य पढ़ लेना चाहिए और तद्नुसार पिंगल पर मैंने कुछ श्रम भी किया है।" (भूमिका पृ. 28) इस कथन से जाहिर है कि कविता, छंद और छंदशास्त्र (पिंगलशास्त्र) के संबंध पर गंभीरता से श्रम किया है और पाया है कि छंदकविता के कान होते हैं। इसका प्रमाण यह है कि मात्रिक छंदों में दिनकर सार नामक छंद को अधिक चुनते हैं। प्रसाद ने इस छंद को "कामायनी" में अभिरुचि से अपनाया था। दिनकर इसको "कुरुक्षेत्र' तृतीय, चतुर्थ और सप्तम आदि लंबे सर्गों में मनोयोग पूर्वक प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए तीसरे सर्ग की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए–

सच है सत्ता सिमट-सिमट
जिनके हाथों में आई
शांतिभक्त वे साधु पुरुष
क्यों चाहें कभी लड़ाई?
हिला डुलो मत हृदय रक्त
अपना मुझको पीने दो
अचल रहे साम्राज्य शांति का
जियो और जीने दो।

"सार" छंद में 28 मात्राएँ होती हैं। सोलह बारह पर यति रहती है और अंत में दो गुरु होते हैं। दो गुरु होने का नियम सर्वत्र पालन नहीं किया जाता। किन्तु यदि दो गुरु हों तो संगीतात्मक नाद की मधुरता बढ़ जाती है।

दिनकर का सबसे प्रिय छंद है–"रूपमाला"। इस छंद का प्रयोग दिनकर मुक्त छंद की तरह करते हैं। इस ढंग से इसे लाते हैं कि मुक्त छंद और रूपमाला का अंतर प्रायः खो जाता है। इसका उदाहरण है–

यह मनुज जो ज्ञान का आगार
यह मनुज सृष्टि का श्रृंगार
नाम सुन भूला नहीं सोचो विचारो कृत्य
यह मनुज श्रृंगार सेवी वासना का भृत्य

रूपमाला छंद में 14–10 पर यति के साथ 24 मात्राएँ होती हैं और अंत में क्रमशः एक गुरु और एक लघु होता है।

दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में छंदों की विविधता रखी है और इस छंद विविधता के मूल में भाव-विविधता ही दृष्टिगत होती है। "पीयूषवर्षा" छंद भी दिनकर ने अपनाया है। इसमें दस या नौ पर यति होती है और अंत में लघु गुरु होते हैं। जैसे–

है बहुत देखा सुना मैंने मगर,
भेद खुल पाया न धर्माधर्म का
आज तक मुझ पर कि रेखा खींचकर
बाँट दूँ मैं पुण्य को या पाप को।

22 मात्राओं वाले राधिका छंद का उदाहरण–

शरदे! विकल सक्रांति काल का नर मैं
कलिकाल भाल पर चढ़ा हुआ द्वापर मैं
संतप्त विश्व के लिए खोजता छाया
आशा में था इतिहास लोक तक आया

'कुरुक्षेत्र' में दोहा और सरसी छंद तक का प्रयोग हुआ है। दोहे का एक उदाहरण है–

"अंत नहीं कर पंथ का कुरुक्षेत्र की धूल
आँसू बरसे तो यहीं खिले शांति फूल"

कवि ने चतुर्थ सर्ग में आल्हा छंद या वीर छंद का भी प्रयोग किया है। इस छंद में क्रमशः 16-15 पर यति होती है–

ब्रह्मचर्यक व्रती धर्म के
महास्तंभ बल के आगार
परम विरागी पुरुष जिन्हें
पाकर भी पा न सका संसार

दिनकर प्राचीन छंद कवित्त या घनाक्षरी की शक्ति को खड़ी बोली की कविता में सर्वाधिक पहचानने वाले कवि हैं। यह छंद उनके काव्य गुरु मैथिलीशरण गुप्त में भी बहुतायत से प्रयुक्त हुआ है। घनाक्षरी या कवित्त छंद का मर्मस्पर्शी प्रयोगों से भरा एक उदाहरण देखिए–

"हाय पितामह यह हार किसकी हुई है यह?
ध्वंस अवशेष पर सिर धुनता है कौन?
कौन भस्म राशि में विफल सुख ढूँढता है?
लपटों से मुकुट का पट बुनता है कौन?
और बैठ मानव की रक्त सरिता के तीर
नियति के व्यंग्य भरे अर्थ गुनता है कौन?
कौन देखता है शवदाह बंधु-बांधवों का
उत्तरा का करुण विलाप सुनता है कौन?

मुक्त छंद की लयपरक गति को कुरुक्षेत्र में बहुत सिद्ध हाथों से दिनकर ने प्रस्तुत किया है जैसे–

"हार कर धन-धाम पांडव भिक्षु बन जब चल दिए
पूछ तब कैसा लगा यह कृत्य उस समुदाय को
जो अनघ का था विरोधी पांडवों का मित्र था"

इस मुक्त छंद पर गद्य का दवाब है किन्तु अर्थ की लय दिनकर ने खंडित नहीं होनी दी है। मुक्त छंद का अर्थ छंद रहित होना नहीं है। इसका तो अर्थ ही है छंद बंधनों से मुक्त रहकर लय के अनुसार भाव का उपयोग। दिनकर मुक्त छंद की इस आंतरिक विशेषता से भलीभाँति परिचित रहे हैं। 'कुरुक्षेत्र' में संयोजित छंद योजना के आधार पर यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि इस काव्य की छंद योजना भाव के उत्कर्ष के अनुकूल और अत्यंत वैविध्यपरक है। परंपरागत शास्त्रीय छंदों का दिनकर ने तिरस्कार नहीं किया है बल्कि नए ढंग से प्रयोग किया है। कवित्त और मुक्त छंद दोनों ही इस कृति में एक साथ हैं। ऐसा लगता है दिनकर परंपरा और आधुनिकता दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित कर रहे हैं। कुरुक्षेत्र के छंद विधान को लेकर ध्यान रखने की बात यह है कि खड़ी बोली हिन्दी के अनुकूल है मात्रिक छंद और दिनकर इसी छंद में प्रयोग और परंपरा की शक्ति से नूतन छंदों की सृष्टि करते हैं। उनके छंद भावों और विचारों की उत्थानपरक गतियों, मानवीय चित्तवृत्तियों, मनोभूमिकाओं के अनुकूल आचरण करते हैं। यह पूरा छंद विधान लय और ध्वनि पर केन्द्रित है। इस प्रकार दिनकर का छंद और लय विधान अभिव्यंजना शिल्प के सौंदर्य को निखारता हुआ दृष्टिगत होता है।

बोध प्रश्न 3

लगभग पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) "दिनकर" के बिंब विधान की विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

ख) निम्नलिखित पंक्तियों में दिनकर ने किस अलंकार का प्रयोग किया है–

"पाशविकता खड्ग जब लेगी उठा
आत्मबल का एक वश चलता नहीं।"

.....

.....

.....

.....

.....

ग) 'कुरुक्षेत्र' में अधिकतर कैसे छंद प्रयुक्त हुए हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

घ) कुरुक्षेत्र में प्रयुक्त घनाक्षरी छंद का एक उदाहरण दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

38.7 सारांश

इस इकाई में आपने कुरुक्षेत्र के अभिव्यंजना शिल्प का अध्ययन किया। अब आप जान गए हैं कि "कुरुक्षेत्र" एक विचार प्रधान प्रबंधात्मक रचना है जिसमें प्रबंध के पुराने शिल्प को तोड़कर विचारों की एकता के निर्वाह को लक्ष्य बनाया गया है। इसके प्रबंध की एकता इसमें निहित विचारों में है। अब आप दिनकर की काव्य भाषा की विशेषताएँ समझ चुके हैं। आप जानते हैं कि किस प्रकार दिनकर ने कविता की भाषा को सहज बोलचाल की भाषा में ढालते हुए उसकी सांस्कारिकता कायम रखी है। किस तरह विचारों की जटिलता और परिवेश की सघनता को भाषा के सहज प्रवाह में ढालते हैं। दिनकर के सक्षम और सश्लिष्ट बिंब विधान और प्रतीकों का परिचय भी आपने प्राप्त किया है। आप जानते हैं कि किस प्रकार कवि ने पारंपरिक और नवीन प्रतीकों का समावेश करके भावों और विचारों

की चित्रात्मक व्यंज़ना की है। साथ ही आप दिनकर के काव्य में अलंकारों के सहज और सार्थक प्रयोग के बारे में भी पढ़ चुके हैं। आप जानते हैं कि अलंकार उनकी कविता का ऊपरी आवरण या सजावट नहीं उसकी आंतरिक अभिव्यक्ति का माध्यम है। "कुरुक्षेत्र" में प्रयुक्त छंदों के वैविध्य और लय की जानकारी भी आपने इस इकाई में प्राप्त की है। आपने देखा है कि दिनकर द्वारा मात्रिक छंदों के सफल प्रयोग ने हिन्दी के कवित, सवैया, रूपमाला आदि जैसे छंदों को खड़ी बोली काव्य के अनुकूल सिद्ध किया है।

38.8 शब्दावली

निबद्ध काव्य : प्रबंध काव्य
अंतर्योजना : आंतरिक तारतम्य
भावावेग : भाव की अतिशयता
ऐंद्रजालिक : जादुई
अन्विति : एकता
इंद्रियग्राह्य : इंद्रियों से महसूस किया जाने वाला
भाव-संवेदन : भाव का वास्तविक अनुभव
अगोचर : जो दिखाई न दे
वाग्विलास : वाणी का चातुर्य या शब्द चातुर्य
अर्थ-वक्रोक्ति : अर्थ की विदग्धता, अर्थ रमणीयता
ऐरावत : हाथियों का राजा हाथी

38.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) i) ✗ , ii) ✗ , iii) ✗ , iv) ✓ , v) ✗.
ख) देखें भाग 38.3
ग) देखें भाग 38.3

बोध प्रश्न 2

क) i) ✗ , ii) ✗ , iii) ✓ , iv) ✓ , v) ✗ , vi) ✗
a) i) हाँ, ii) हाँ, iii) नहीं, iv) हाँ, v) नहीं, vi) हाँ, vii) हाँ, viii) नहीं
ग) देखें, भाग 38.4 अथवा "कुरुक्षेत्र" का वाचन नामक इकाई 361
घ) देखें, भाग 38.4 अथवा "कुरुक्षेत्र" का वाचन नामक इकाई 36।
ङ) i) अभिधा, ii) लेते हैं, iii) ओजस्विता

बोध प्रश्न 3

क) देखें, भाग 38.4
ख) मानवीकरण
ग) मात्रिक छंद
घ) देखें, भाग 38.6 अथवा इकाई 36 कुरुक्षेत्र का वाचन।

इकाई 39 "कुरुक्षेत्र" का प्रतिपाद्य

इकाई की रूपरेखा

39.0 उद्देश्य
39.1 प्रस्तावना
39.2 परिवेश
39.3 केंद्रीय समस्या
  39.3.1 केंद्रीय समस्या का परिचय एवं महत्व निर्धारण
  39.3.2 रचनाकार का दृष्टिकोण
  39.3.3 केंद्रीय समस्या के प्रतिपादन में पात्रों की भूमिका
  39.3.4 मूल्यांकन
39.4 अन्य समस्याएँ
  39.4.1 विज्ञान का विनाशकारी प्रभाव
  39.4.2 परमधर्म और आपद्धर्म का निर्धारण
  39.4.3 बुद्धि और हृदय का संतुलन
  39.4.4 मूल्यांकन
39.5 संदेश
  39.5.1 संदेश का स्वरूप
  39.5.2 संदेश की प्रासंगिकता
  39.5.3 मूल्यांकन
39.6 सारांश
39.7 शब्दावली
39.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

39.0 उद्देश्य

पिछली इकाइयों में आपने कुरुक्षेत्र के वस्तु एवं शिल्प पक्ष का अध्ययन किया था। आशा है आप इस अध्ययन के द्वारा इस रचना को भली प्रकार समझ गये होंगे। यह इकाई कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य से संबंधित है। इसमें आप आधुनिक काव्य-धारा के सुप्रसिद्ध कवि श्री रामधारी सिंह दिनकर की विशिष्ट काव्य-कृति कुरुक्षेत्र में उठायी गयी विशिष्ट समस्याओं का परिचय प्राप्त करते हुए उसके संदेश से परिचित हो सकेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- कुरुक्षेत्र के रचनाकाल की परिस्थितियों एवं प्रेरणा-भूमि को समझ सकेंगे,
- कृति की केन्द्रीय समस्या जो प्रतिपाद्य के मूल में विद्यमान है–का परिचय प्राप्त कर सकेंगे,
- केन्द्रीय समस्या से संबंध अनय विशिष्ट समस्याओं का निर्धारण कर सकेंगे,
- कृति के संदेश के स्वरूप और उसकी प्रासंगिकता का मूल्यांकन कर सकेंगे।

39.1 प्रस्तावना

कुरुक्षेत्र के वस्तु एवं शिल्प का अध्ययन करने के उपरांत अब आप यह जानना चाहेंगे कि इस कृति में कवि का रचनागत उद्देश्य क्या रहा है। क्योंकि किसी भी रचना का उद्देश्य उसकी समकालीन परिस्थितियों एवं रचनाकार की प्रेरणा-भूमि से आकार ग्रहण करता है। अतः आपकी यह भी जिज्ञासा होगी की कुरुक्षेत्र किन परिस्थितियों एवं प्रेरणाओं से प्रेरित होकर लिखा गया है। इस रचना की केन्द्रीय एवं अन्य विशिष्ट समस्याओं को समझ लेना आपके लिए इस कारण आवश्यक है क्योंकि इन्हीं से प्रतिपाद्य का स्वरूप निर्धारित होता है। रचनाकार ने 'कुरुक्षेत्र' के माध्यम से जो संदेश अपने पाठकों को देना चाहा है उसको